|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 9: राजविद्याराजगुह्ययोग

2/3 (श्लोक 7-13), शनिवार, 19 अक्टूबर 2024

विवेचक: गीता प्रवीण कविता जी वर्मा

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/VNq8pe4iBaM

उदासीनता भगवान का विशेष गुण है।

देश भक्ति गीत, प्रार्थना एवं दीप प्रज्वलन के बाद राजविद्याराजगुह्ययोग नामक अध्याय का विवेचन प्रारम्भ हुआ। यह नौवाँ अध्याय भगवद्गीता का मध्य भाग है। पिछले सप्ताह हमने जाना कि इस अध्याय में ज्ञान, कर्म और भक्तियोग का मिश्रण है। इस अध्याय को ठीक से समझ लिया तो कई सिद्धान्त समझ में आ जायेंगे। इस अध्याय में ज्ञानयोग के छह श्लोक आये हैं। हमनें देखा कि श्रीभगवान ने अनासक्ति का उपदेश दिया। सभी कर्म परिणाम और फल का विचार छोड़ कर कर्त्तव्य समझ कर करें। श्रीभगवान अनासक्ति का उपदेश विभिन्न स्थानों पर विभिन्न प्रकार से देने वाले हैं। श्रीभगवान आकाश और वायु का उदाहरण देते हुए बोलते हैं कि वायु सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त है, किन्तु आकाश वायु से लिप्त नहीं है। ठीक वैसे ही हमें भी संसार से पृथकता का भाव रखना होगा। भगवान श्रीकृष्ण ने जो जीवन मनुष्य अवतार ग्रहण करके जिया, उसको उपदेश रूप में हमारे और अर्जुन के सामने बता रहे हैं। हममें भी अनासक्ति आ जाए तो सभी दु:खों का अन्त हो जाए।

कठोपनिषद् में आया है कि आत्मा सदा आनन्द की प्राप्ति के लिए प्रयासरत रहती है। जीव या हम उस आनन्द को विषयों में ढूँढते हैं। जीभ की आनन्द प्राप्ति के लिए विषयों से आसक्ति हो जाती है। आनन्द के लिए चीनी की बीमारी होने पर भी मीठा खाना नहीं छोड़ते। श्रवणेन्द्रियाँ नहीं सुनने वाली बातों को सुनती हैं। हम न देखने वाली वस्तुओं को देखते हैं। श्रीभगवान एकादश इन्द्रियों- पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन की बात करते हैं। जिस-जिस व्यक्ति, वस्तु, परिस्थिति में आसक्ति होती है, उनको त्यागने की बात कहते हैं। आगे के श्लोकों में सृष्टि के निर्माण या सृजन और संहार की प्रक्रिया के बारे में बतायेंगे। आगे के श्लोकों में जीव और परमात्मा में क्या अन्तर है? इस रहस्य को खोलेंगे। वेदान्त में ईश्वर को परमसत्ता नहीं माना है, वरन् ईश्वर को भी माया का स्वरूप बताया है। ब्रह्म को परमब्रह्म और परमसत्ता माना है। आगे के श्लोक में श्रीभगवान और स्पष्ट करते हैं।

9.7

सर्वभूतानि कौन्तेय, प्रकृतिं(यँ) यान्ति मामिकाम्।
कल्पक्षये पुनस्तानि, कल्पादौ विसृजाम्यहम्॥9.7॥

हे कुन्तीनन्दन ! कल्पों का क्षय होने पर (महाप्रलय के समय) सम्पूर्ण प्राणी मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं (और) कल्पों के आदि में (महासर्ग के समय) मैं फिर उनकी रचना करता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान सातवें श्लोक में बताते हैं कि सारे भूतों की रचना कल्प के आरम्भ में, मैं करता हूँ। कल्प के क्षय के समय ये मुझ में विलीन हो जाते हैं। कल्प के आरम्भ में, मैं सृजन करता हूँ, यह कल्पना है। सृष्टि की रचना भी श्रीभगवान करते हैं, तो सुख-दुःख को भी श्रीभगवान ने ही बनाया है। दुःख भी श्रीभगवान द्वारा निर्मित हैं, तो वे इतने निष्ठुर कैसे हो गये कि हमारे लिए दुःख को निर्मित कर दिया। ऐसा नहीं सोचना चाहिए।

ब्रह्मसूत्र में श्रीशङ्कराचार्य जी ने बहुत अच्छे से इसे प्रतिपादित किया है। श्रीभगवान तो केवल लीला मात्र करते हैं। सृष्टि की रचना उनके लिए क्रीड़ा मात्र होती है। श्रीभगवान उदासीन हैं, तो हमारे जीवन में दुःख कैसे आते हैं? कल्प के क्षय में हमारे सञ्चित कर्म परमात्मा में विलीन हो जाते हैं और परमात्मा में संस्कार रूप में विलीन ही रहते हैं। कल्प के आरम्भ में हमारे कर्म उदय होने लगते हैं। बुरे कर्म दुःख रूपी परिणाम देते हैं तो पुण्य कर्म सुख रूपी परिणाम देते हैं।

यह प्रश्न या शङ्का भी नहीं करनी चाहिए कि सृष्टि के प्रारम्भ में सुख-दुःख या कर्मों की गति को कैसे निर्धारित किया गया होगा? प्रथम सृष्टि आरम्भ हुई ही नहीं है। हमारे यहाँ ये माना जाता है कि सृष्टि और अज्ञान अनादि हैं।

वेदान्त शास्त्र में छह पदार्थों को अनादि कहा गया है, उसी में से सृष्टि और अज्ञान हैं। सृष्टि सदैव से चली आ रही है। हमारे अनन्त जन्म हो चुके हैं इसीलिए श्रीभगवान ने चौथे अध्याय में अर्जुन को कहा-

श्रीभगवानुवाच

बहूनि मे व्यतीतानि, जन्मानि तव चार्जुन।

तान्यहं(वँ) वेद सर्वाणि, न त्वं(वँ) वेत्थ परन्तप॥4.5॥

मेरे, तुम्हारे और हम सभी के बहुत जन्म व्यतीत हो चुके हैं। ये बात श्रीभगवान जानते हैं, पर अर्जुन और हम नहीं जानते। हमारे पास सीमित बुद्धि, सीमित शक्ति है। इस श्लोक में कल्प की बात आयी तो पहले कल्प के बारे में बात कर लेते हैं

कल्प किसको कहते हैं, इसकी परिभाषा क्या है?

चार युग होते हैं।

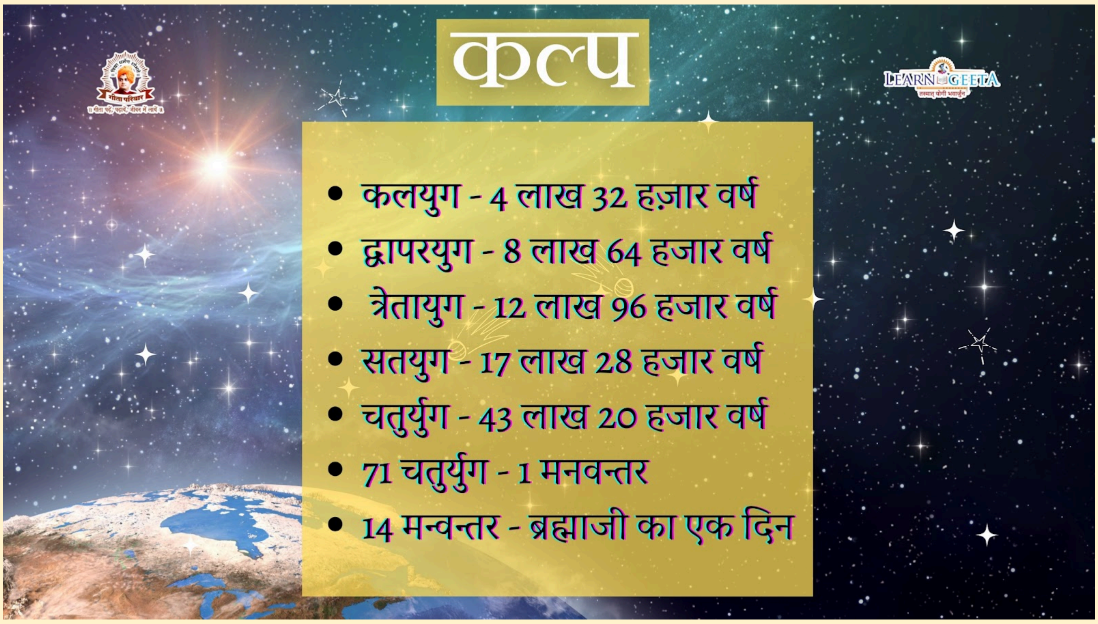

कलयुग— जिसका काल खण्ड चार लाख बत्तीस हजार वर्ष है।

द्वापरयुग— आठ लाख चौसठ हजार वर्ष का है।

त्रेतायुग— जो कलयुग से तीन गुना अधिक काल खण्ड का या सत्रह लाख अठाईस हज़ार वर्ष का है।

सतयुग— तियालीस लाख बीस हज़ार वर्ष का है जो कि कलयुग के काल खण्ड से चार गुना बड़ा होता है।

इकहत्तर चतुर्युग का एक मन्वन्तर होता है।

चौदह मन्वन्तर का ब्रह्मा जी का एक दिन होता है।

इस गणना की हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

इस काल गणना को देखें तो हमारा अस्तित्व ही नहीं है। नदी में या प्रवाह में जैसे पत्थर डालते हैं, तो बुलबुले उठते हैं और समाप्त हो जाते हैं। ऐसे ही हमारा जीवन है। हम आते हैं और नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्माजी के दिन में सृजन होता है और अन्त में सब कुछ समाप्त हो जाता है, प्रकृति में लीन हो जाता है। इतनी बड़ी काल गणना में भी हमारा मत, हमारे भाव को लेकर हम बैठ जाते हैं।

कभी हम बहुत सुखी, कभी हम बहुत दुःखी होते हैं, मतभेद हो जाते है, वैमनस्य हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से ये देखेंगे तो ये सुख-दुःख, मत इतने छोटे लगते हैं कि इनका कोई महत्त्व नहीं लगता अपितु मूर्खता लगती है। सृष्टि कितनी बड़ी है, कितने जन्म हो चुके हैं एवं कितने होने वाले हैं, यह बात हमको समझ में आने लगती है तो हम दम्भ से बच सकते हैं। श्रीभगवान कहते हैं कि अनासक्त बनो। जो प्राप्त हुआ है उस यश, मान और कीर्ति का आप क्या करेंगे?

अगले श्लोक में श्रीभगवान बताते हैं कि यह सब नश्वर है, सब ख़त्म हो जाने वाला है, सबका अस्तित्व ही मिट जाने वाला है, फिर इनकी महत्ता ही क्या रह जाती है? निरासक्त बनें। नश्वरता के बोध से ही हम संसार से निर्लिप्त हो पायेंगे।

9.8

प्रकृतिं(म्) स्वामवष्टभ्य, विसृजामि पुनः(फ्) पुनः।
भूतग्राममिमं(ङ्) कृत्स्नम्, अवशं(म्) प्रकृतेर्वशात्।।9.8।।

प्रकृति के वश में होने से परतन्त्र हुए इस सम्पूर्ण प्राणी समुदाय की (कल्पों के आदि में) मैं अपनी प्रकृति को वश में करके बार-बार रचना करता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि मैं प्रकृति को अधीन करके इसको बार-बार रचता और नष्ट कर देता हूँ। हम जीवन को इतना महत्त्वपूर्ण मान लेते हैं कि हमें लगता है, बस मेरी बात सुननी चाहिए, मेरे मत को मानना चाहिए। मैं बहुत विद्वान हूँ, मैंने गीता पढ़ ली है, जान ली है किन्तु श्रीभगवान कहते हैं कि पुनः - पुनः मेरे द्वारा निर्मित होने वाली इस सृष्टि में तुम्हारा अस्तित्व ही क्या है? सभी भूतसमुदाय के लिए ध्यान देने की बात है कि ईश्वर और जीव में क्या अन्तर है? प्रकृति को नियन्त्रित करके ईश्वर सृजन करते हैं और भूत, प्राणी प्रकृति के अधीन होकर जन्म लेते हैं। प्रकृति को हम नियन्त्रित नहीं करते, प्रकृति हमें नियन्त्रित करती है। श्रीभगवान जन्म लेते हैं तो प्रकृति को नियन्त्रित करके जन्म लेते हैं। यह ही कारण है कि कृष्ण, कृष्ण हैं और हम, हम हैं। अतिरिक्त शक्तियों के साथ श्रीकृष्ण अलग हैं।

पन्द्रहवें अध्याय में श्रीभगवान कहते हैं-

ममैवांशो जीवलोके, जीवभूतः(स्) सनातनः।

मनः(ष्) षष्ठानीन्द्रियाणि, प्रकृतिस्थानि कर्षति।।15.7।।

सब जीव मेरा ही अंश है। जीव श्रीभगवान का अंश होने के बाद भी प्रकृति से क्यों प्रभावित होते हैं? जबकि श्रीभगवान प्रकृति से प्रभावित नहीं होते।

इसको श्रीभगवान ने यहाँ बहुत सुन्दर तरीक़े से बताया है कि वो प्रकृति को वश में करके प्रकट होते हैं जबकि जीव प्रकृति के नियन्त्रण में प्रकट होते हैं। जैसे त्रेता या द्वापर युग में जब श्रीभगवान ने अवतार लिया तो उन्हें पता था कि उनका कहाँ जन्म होगा, कौन माता-पिता होंगे? वे सुख-दुःख को साक्षी भाव से देखते हैं। सुख-दुःख से अपने को अलग कर लेना, शरीर से स्वयं को अलग कर लेना ही, द्रष्टा भाव है। रङ्गमञ्च पर जैसे कलाकार विचरते हैं, वैसे श्रीभगवान विचरण करते हैं। नाटक में जैसे कलाकार अपना पात्र निभाता है, वैसे ही श्रीभगवान मात्र अवतार ग्रहण करते हैं, कार्य की पूर्ति पर उनका तिरोभाव हो जाता है। सुख-दुःख में, सुविचार आने पर भी प्रकृति के वशीभूत होकर भी हम कुछ नहीं करते।

दुर्योधन ने महाभारत में कहा है कि-

"**जानामि धर्मं न च में प्रवृत्तिः।।
जानाम्यधर्मं न च में निवृत्तिः"।।**

दुर्योधन श्रीकृष्ण को कहता है कि मैं सारे धर्म को जानता हूँ, किन्तु वहाँ मेरी प्रवृत्ति (रुचि) नहीं है। अधर्म को भी जानता हूँ, पर वहाँ से मेरी निवृत्ति नहीं है। कोई देव अन्दर में बैठा है, वो जैसा करवाता है, मैं वैसा करता हूँ। सत्य तो यह है कि कोई देव नहीं बैठा है। ये प्रकृति ही हमें वश में कर के अधर्म के कार्य करवाती है। यही अन्तर श्रीभगवान और जीव में हैं। जो जीव प्रकृति को वश में कर लेते हैं, वो महात्मा, महापुरुष बन जाते हैं, ईश्वर स्वरूप बन जाते हैं। इसी अनासक्ति का उपदेश देते हुए अगले श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं।

9.9

न च मां(न्) तानि कर्माणि, निबध्नन्ति धनञ्जय।
उदासीनवदासीनम्, असक्तं(न्) तेषु कर्मसु।।9.9।।

हे धनञ्जय ! उन (सृष्टि-रचना आदि) कर्मों में अनासक्त और उदासीन की तरह रहते हुए मुझे वे कर्म नहीं बाँधते।

विवेचन- श्रीभगवान जो कर्म करते हैं, उन्हें भी उन अच्छे या बुरे कर्मों का फल तो मिलना चाहिए, यह शङ्का आती है। इसका निराकरण शास्त्रकारों ने किया है। हमारा पलक झपकाना या अङ्गुली हिलाना भी किसी कर्म का परिणाम है। इतनी बड़ी सृष्टि का निर्माण करने वाले श्रीभगवान को कोई फल क्यों नहीं मिलता? पाप-पुण्य कितने ही होते हैं, कल्प का क्षय करते हैं, अनन्त जीव उसमें समाहित हो जाते हैं, मृत्यु को पाते हैं। उस पाप का फल उन्हें नहीं प्राप्त होगा? सृष्टि की रचना का फल नहीं प्राप्त होगा? यहाँ पर श्रीभगवान बता रहें हैं कि ये कर्म मुझे नहीं बाँधते क्योंकि में उदासीन रहता हूँ। इस कर्म में मेरी कोई आसक्ति नहीं होती। किसी भी व्यक्ति, परिस्थिति, विषय से मैं लिप्त नहीं होता हूँ।

तीसरे अध्याय में श्रीभगवान ने कहा है कि-

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं(न्), त्रिषु लोकेषु किञ्चन।नानवाप्तमवाप्तव्यं(वँ), वर्त एव च कर्मणि।।3.22।।

तीनों लोकों में मेरे लिए कोई कर्त्तव्य या कर्म नहीं है।
शरीर के साथ कर्त्तव्य और कर्म आयेंगे ही, पर शरीराभिमान नहीं होना चाहिए।

"**अहम् इदम् शरीरम्**" वाले के कर्त्तव्य बने हुए हैं।

"इदम् शरीर न मम" इस स्थिति तक पहुँचने वाले के लिए कोई कर्त्तव्य कर्म नहीं है।

श्रीभगवान कहते हैं कि मेरे लिए कोई कर्त्तव्य नहीं है, फिर भी उदासीन रह कर कर्म करता हूँ। लोकसङ्ग्रह के लिए कर्म करना पड़ता है। वे जानते हैं कि मैं जैसा कर्म करूँगा, वैसा लोग देख कर करने का प्रयास करेंगे। कोई देख कर सच में कर पाएगा, कोई दम्भ में कर पाएगा। श्रीकृष्ण की भाँति उदासीन रह कर कर्म करें।

यद्यदाचरति श्रेष्ठः(स्), तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं(ङ्) कुरुते, लोकस्तदनुवर्तते।।3.21।।

सभी लोग मेरा अनुसरण करेंगे इसलिए भली प्रकार से सात्त्विक कर्म करूँगा। इसी बात को गीतकारों ने कई बार कहा है कि गीता का उपदेश सुनो, चिन्तन करो। किसी दूसरे के ऊपर नहीं डाल कर स्वयं के चरित्र पर डाल कर देखना चाहिए। हमारे शास्त्रकारों ने अधिकार भेद बताये हैं- मध्यम, उत्तम, अधम अधिकार। हम इन स्थितियों का बाहर से आङ्कलन नहीं कर सकते। उसे श्रीभगवान ही जानते हैं या वो व्यक्ति स्वयं इसलिए गीता के श्लोकों को पढ़ कर स्वयं पर डाल कर विश्लेषण करना चाहिए इसलिए श्रीभगवान ने उदासीनता के लिए आकाश एवं वायु का उदाहरण देने के बाद स्वयं की बात कही है।

एक कथा आती है-
काशी नरेश के दरबार में एक विद्वान थे, उनका नाम खुमानी था। उनकी विद्वता से अन्य दरबारी चिढ़ते थे। एक दिन एक दरबारी ने उन पर व्यङ्ग्य में कुछ कह दिया। दोनों में बहुत वाद-विवाद हुआ, कोई निष्कर्ष नहीं निकला तो मध्यस्थ की आवश्यकता हुई। वो मध्यस्थ उन दरबारियों में से ही एक और उस व्यङ्ग्य करने वाले दरबारी का सुहृदय था। मध्यस्थ तो वो होना चाहिए, जो तटस्थ हो किन्तु वो मध्यस्थ तटस्थ नहीं था इस कारण खुमानी जी के विरुद्ध निर्णय दे दिया गया।

खुमानी जी ने एक श्लोक भी लिखा जिसका अर्थ है-

एक बार चन्दन और कीचड़ के बीच विवाद हुआ। मध्यस्थ मेंढक को बनाया गया, जो कीचड़ के साथ ही रहता था। मेंढक भला किसका साथ देगा, कीचड़ का ही। मध्यस्थ बनें पर मध्यस्थ उदासीन होता है, उसे उदासी को धारण करना पड़ता है। रिश्तों से उदासीन बनना होगा। कई बार ऐसे निर्णय लेने पड़ते हैं, जब हम बुरे बन जाते हैं। दो रिश्तों में लड़ाई या वैमनस्य हो जाये और तीसरा निर्णय लेते वक़्त अगर सोचे कि वो बुरा न बने, रिश्ता भी रह जाये तो उसे लोक कामना कहते हैं। हमेशा परिस्थिति देख कर निर्णय लेना चाहिए।

'**सत्यम ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम्।।**

श्रीभगवान कहते हैं कि उदासीन की भाँति रहने के कारण उन्हें कर्म का फल नहीं मिलता।

उदासीनता का एक ओर उदाहरण-
मणिकर्णिका घाट पर शवों को जलते हुए देखते हैं पर रोते नहीं क्योंकि उनके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं। हम रोते उन्हीं के लिए हैं, जिनके साथ हमारा सम्बन्ध होता है। सम्बन्धों से आसक्ति छोड़ने से ही दुःख से दूर जा पाएँगे। छठें अध्याय में अनेक प्रकार के मध्यस्थ और द्वेष बताये गये हैं। श्रीभगवान अगर सृष्टि की रचना में उदासीन होते हैं तो सृष्टि की रचना करता कौन है? ये आगे के श्लोक में बतायेंगे।

9.10

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः(स्), सूयते सचराचरम्।
हेतुनानेन कौन्तेय, जगद्विपरिवर्तते।।9.10।।

प्रकृति मेरी अध्यक्षता में सम्पूर्ण चराचर जगत को रचती है। हे कुन्तीनन्दन ! इसी हेतु से जगत का (विविध प्रकार से) परिवर्तन होता है।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं कि मैं तो अध्यक्षता करता हूँ। प्रकृति सृष्टि की रचना करती है।

उदाहरण-
जैसे एक पङ्खा है, जो प्लास्टिक का है, यानी उसका शरीर प्लास्टिक का है। उस पङ्खे का प्लास्टिक का शरीर उसकी प्रकृति हो गयी। उसमें जो बिजली प्रवाहित होगी, वो पुरुष, परमात्मा और अध्यक्ष हो गयी। जब तक बिजली आएगी नहीं, पङ्खा चलेगा नहीं। बिजली आने से ही पङ्खा घूमता है, उसी भाँति क्रिया शक्ति प्रकृति के पास है। प्रकृति किसके प्रभाव से यह सब कर रही है? वो परमात्मा का प्रभाव है। उस बिजली का प्रभाव है। श्रीभगवान तटस्थ हैं, सिर्फ़ ऊर्जा को प्रवाहित करते हैं, क्रिया प्रकृति करती है। यहाँ पर साँख्य का सिद्धान्त आ जाता है- प्रकृति और पुरुष। साँख्य और वेदान्त के सिद्धान्तों में कुछ-कुछ अन्तर है।

यहाँ प्रकृति का अर्थ अज्ञान एवं माया लिया गया है, जबकि साँख्य में प्रकृति को प्रकृति कह कर ही सम्बोधित किया गया है। यह प्रकृति, माया, अज्ञान ही सम्पूर्ण सृष्टि की रचना करती है। श्रीभगवान कहते हैं, मैं
मात्र अध्यक्ष की भाँति रहता हूँ।

अर्जुन को सम्बोधित करते हुए श्रीभगवान कहते हैं कि इसी हेतु से यह जगत परिवर्तनशील है।**श्रीभगवानुवाच**

ऊर्ध्वमूलमधः(श्) शाखम्, अश्वत्थं(म्) प्राहुरव्ययम्।

छन्दांसि यस्य पर्णानि, यस्तं(वँ) वेद स वेदवित्।।15.1।।

श्रीभगवान ने पन्द्रहवें अध्याय में भी वही बात कही है कि संसार वृक्ष का कभी नाश नहीं होता। ऊर्ध्व मूलम्, जिसकी जड़ें ऊपर की ओर हैं। यह संसार अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। ब्रह्माजी की रात्रि आएगी, दिन आएगा, किन्तु सृष्टि का यह प्रवाह चलता रहेगा, मोक्ष तक। आगे बताते हैं कि प्रकृति ही कार्य करवाती है, पाप-पुण्य करवाती है।

पाप का भोग, भोग का कर्म यही चेतन का आनन्द है। प्रकृति के वश में होकर कर्म करते हैं, कर्म के फलस्वरूप एक भोग बन जाता है, भोग भोगने के लिए फिर से जन्म लेना पड़ता है। भोग का फिर कर्म बन जाता है। इस तरह सृष्टि का चक्र चलता ही रहता है।

दो जगह इसी बात की पुष्टि श्रीभगवान ने गीताजी में की है। यह शरीर है तो कर्म करते हैं, कर्म का फल भोग होता है, फिर कर्म भोगने के लिए जन्म लेते हैं। इस तरह यह चक्र चलता रहता है।

9.11

अवजानन्ति मां(म्) मूढा, मानुषीं(न्) तनुमाश्रितम्।
परं(म्) भावमजानन्तो, मम भूतमहेश्वरम्।।9.11।।

मूर्ख लोग मेरे सम्पूर्ण प्राणियों के महान् ईश्वररूप श्रेष्ठ भाव को न जानते हुए मुझे मनुष्य शरीर के आश्रित मानकर अर्थात् साधारण मनुष्य मानकर (मेरी) अवज्ञा करते हैं।

विवेचन- इस श्लोक में श्रीभगवान अपने स्वभाव के बारे में बताते हुए दो तरह की प्रकृतियों के बारे में बतायेंगे। आसुरी एवम् दैवीय प्रकृति। इनका विस्तार से वर्णन श्रीभगवान ने सोलहवें अध्याय में किया है। इसी का वर्णन श्रीभगवान स्पष्टता से आगे करने वाले हैं। इसको हम सोलहवें अध्याय का परिशिष्ट भी कह सकते हैं। जो श्रीभगवान को अध्यक्ष, उदासीन, निर्लिप्त नहीं जानते और वे ये सब कार्य लीला की तरह कर रहे हैं, सारे कार्य प्रकृति ही कर रही है, यह नहीं जानते, ऐसे अज्ञानी जन, श्रीभगवान को साधारण शरीर धारण करने वाला ग्वाला ही समझते हैं। जैसे शिशुपाल ने श्रीभगवान को साधारण ग्वाला ही माना। जो उनके ईश्वरीय भाव को नहीं जानते वो उनका तिरस्कार भी कर देते हैं। व्यवहारिक जीवन में भी श्रीभगवान का तिरस्कार होते हुए हम देखते हैं। आगे श्रीभगवान ऐसे लोगों की प्रकृति के बारे में विस्तार से बताने वाले हैं।

9.12

मोघाशा मोघकर्माणो, मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं(ञ्) चैव, प्रकृतिं(म्) मोहिनीं(म्) श्रिताः।।9.12।।

(जो) आसुरी, राक्षसी और मोहिनी प्रकृति का ही आश्रय लेते हैं, ऐसे अविवेकी मनुष्यों की सब आशाएँ व्यर्थ होती हैं, सब शुभ-कर्म व्यर्थ होते हैं (और) सब ज्ञान व्यर्थ होते हैं अर्थात् जिनकी आशाएँ, कर्म और ज्ञान (समझ) सत्-फल देने वाले नहीं होते।

विवेचन- मोह का अर्थ होता है, व्यर्थ। ऐसे लोगों की आशाएँ भी व्यर्थ हो जाती हैं। एक भक्त की आशा होती है कि वो श्रीभगवान का भजन करे, उनके साथ एकाकार हो जाए, उनके स्वरूप में ही विलीन हो जाए, सत् स्वरूप में आ जाए। ठीक इसका उल्टा मूढ़ जनों की आशा, सुख भोग, मान-बड़ाई और कामना की होती है। हम सब भी संसार से यही चाहते रहते हैं और प्रयास करते रहते हैं। इतना प्रयास करते हैं कि दैनिक पूजा-पाठ एवं ध्यान भी पूर्ण रूप से नहीं कर पाते। कामना से इतने बँध जाते हैं कि स्वयं की प्राप्ति का भी समय नहीं मिलता है। इस मान, बड़ाई और कामना का अन्त कल्प के अन्त में होने वाला ही है। संसार और कर्मों के क्षय के बाद बचेगा मात्र भक्त ही। श्रीभगवान जब सृष्टि का फिर से आरम्भ करेंगे तो भक्त फिर संसार में लौट कर नहीं आता। कामना में फँसा हुआ व्यक्ति फिर-फिर लौट कर आता है।

कायिक क्रिया मानसिक क्रिया पर निर्भर करती है। श्रीभगवान की इच्छा वाला भजन करेगा। काम की इच्छा वाला व्यर्थ के कर्मों में लिप्त होगा।
शास्त्रों का, विज्ञान का ज्ञान भी व्यर्थ हो जाता है, यदि उसे धारण नहीं किया जाए।

उपनिषदों में आया है कि नारदजी श्रीभगवान को उपदेश देने को कहते हैं। कहते हैं, मुझे मात्र शब्द का ही ज्ञान है। मुनि लोग कहते हैं कि आप ब्रह्माजी के पुत्र हो, ज्ञाता हो, आपको क्या उपदेश करें? शब्द से तत्त्व का ज्ञान नहीं होता है। तत्त्व को जानने के लिए निःशब्द होकर बैठ जाएँ। मौन में जो अनुभूति होती है, वही अद्वैत है।

श्रीभगवान ने तीन प्रकार की प्रकृति बतायी। आसुरी, राक्षसी और मोहिनी।

आसुरी प्रकृति वाले इच्छा पूर्ति के लिए कर्म करते हैं, किन्तु एक कामना पूर्ण होती है कि दूसरी कामना पैदा हो जाती है। अग्नि की तरह बढ़ती ही जाती है। धन कमाने की इच्छा का कभी अन्त नहीं होता, उत्तरोत्तर बढ़ते ही देखा है। कामना पूर्ति नहीं कर पाने के कारण बाद में तो मनुष्य दुष्कर्म करने लगता है।

आगे श्रीभगवान भक्तों का चिन्तन करते हैं। ज्ञानयोग और प्रकृति के बारे में अभी तक बताया, अब भक्तियोग की बात करेंगे।

9.13

महात्मानस्तु मां(म्) पार्थ, दैवीं(म्) प्रकृतिमाश्रिताः।

भजन्त्यनन्यमनसो, ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।9.13।।

परन्तु हे पृथानन्दन ! दैवी प्रकृति के आश्रित अनन्य मन वाले महात्मा लोग मुझे सम्पूर्ण प्राणियों का आदि (और) अविनाशी समझकर मेरा भजन करते हैं।

विवेचन- मेरे भक्त जो अनन्य भाव से मेरी पूजा, भजन करते हैं, वे भक्त जानते हैं कि मैं ही चराचर का निर्माता हूँ, सञ्चालक हूँ। मेरा कभी भी ह्रास नहीं होता, नाश नहीं होता है।

अव्यय शब्द परमात्मा और जगत दोनों के लिए आता है। इस श्लोक में परमात्मा के लिए अव्यय शब्द आया है। श्रीभगवान हमेशा रहने वाले हैं। एक बार तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति हो जाएगी तो हम भी सदा-सर्वदा रहने वाले हैं। इस श्लोक से श्रीभगवान ने भक्तियोग का आरम्भ कर दिया है।
इसी के साथ आज के विवेचन सत्र का समापन होता है।

प्रश्नोत्तर सत्र-

प्रश्नकर्ता- राजेन्द्र प्रसाद भैया
प्रश्न- द्वैतवाद और अद्वैतवाद में अन्तर समझा दीजिए?
उत्तर- द्वैतवाद के अनुसार हमारी बुद्धि इस प्रकार की है कि यह संसार सत्य है किन्तु अद्वैतवाद के अनुसार हम अज्ञानता की निद्रा से उठ जाते हैं और ज्ञान की प्राप्ति के बाद इस संसार को सत्य न मान कर एक स्वप्न मानते हैं। हमें इस बात का ज्ञान हो जाता है-
"न द्वैतं विद्यते।।"
इसको और अधिक अच्छे से समझने के लिए चूड़ामणि आदि को पढ़ा जा सकता है।

प्रश्नकर्ता- ममता दीदी
प्रश्न- सृष्टि अनन्त काल से चल रही है। यदि सभी आत्माओं को मोक्ष मिल जाएगा तो धरती पर कौन जन्म लेगा?
उत्तर- इसका उत्तर एक जैववाद अथवा बहुजैववाद से भी दिया जा सकता है। अनन्त आत्माएँ हैं। उनका अन्त कभी नहीं हो सकता है।

अद्वैतवाद के अनुसार कुछ है ही नहीं और कुछ समाप्त होने के लिए कुछ होना भी आवश्यक है, यह सब हमें लग रहा है किन्तु यह सब आभासी है, स्वप्न है।

इसके लिए शास्त्रों में एक उदाहरण आता है कि जैसे हमारे कण्ठ में माला है और हम भूल गए हैं। कई बार ऐनक के साथ भी यही होता है, वह हमारी नाक पर होती है और हमें पता ही नहीं चलता, उसे हम ढूँढते रहते हैं।

यह प्राप्तस्य प्राप्ति है। जो पहले से ही हमारे पास है, अज्ञानता के आवरण के हटने के बाद वही प्राप्त हो रहा है। मोक्ष और ज्ञान सब हमारे भीतर ही है। उसे बस जानने की आवश्यकता है।

प्रश्नकर्ता- अनीता दीदी
प्रश्न- गुरु के चयन की क्या पद्धति होती है?
उत्तर- स्वामी जी के अनुसार गुरु जिसे बनाएँ, उनमें कुछ बातें अवश्य देख लें-
1) जो गुरु स्वयं की पूजा न करवाते हों।
2) शास्त्रों में लिखी हुई बातों को ही बताते हों।
3) आपको उनसे दीक्षा के कार्यक्रम में जाकर दीक्षा भी लेनी होती है।

प्रश्नकर्ता- रश्मि दीदी

प्रश्न- विरक्त हो कर कर्म करना चाहिए। यह विरक्ति की स्थिति कैसे प्राप्त होती है?
उत्तर- विरक्ति की स्थिति साधना से प्राप्त होती है। गीता परिवार का ध्येय वाक्य- गीता पढ़ें, पढ़ाएँ जीवन में लाएँ। यह जीवन में लाने के लिए हमें किसी सेवा कार्य में लगना चाहिए, कोई नाम जप करना चाहिए या फिर शास्त्रों का अधिकाधिक अध्ययन करना चाहिए। जब हम इन सबका मिश्रण लेकर चलते हैं और फिर भक्ति करते हैं, वैराग्य की ओर अग्रसर होते हैं तो धीरे-धीरे विरक्तता का भाव आने लगता है।

प्रश्नकर्ता- रजनी दीदी
प्रश्न- श्रीमद्भगवद्गीता में अट्ठारह अध्याय ही क्यों हैं?
उत्तर- इसके दो मत हैं-
1) यह अनायास ही हो गया।
2) वेदव्यास जी ने महाभारत में अट्ठारह का वैशिष्ट्य किया है। महाभारत में अट्ठारह पर्व हैं और महाभारत का यद्ध भी अट्ठारह दिन चला। वेदव्यास जी ने अष्टादश पुराण भी लिखे हैं।

प्रश्नकर्ता- कीर्ति पाण्डे भैया
प्रश्न- जब सभी कार्य प्रकृति हमसे करवाती है तो अच्छे-बुरे का फल हमें क्यों मिलता है?
उत्तर- प्रकृति चेतन नहीं है। हमारे कर्मों का नियन्त्रण हमारे पास ही होता है। प्रकृति सभी सम्भावित विकल्प हमारे समक्ष लाती रहती है और हमें ही उसमें से शुद्ध व उचित का चयन करना होता है। अतः हमारे कर्मों के लिए हम स्वयं उत्तरदायी होते हैं।

।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं

पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||